संवादसेतु

मीडिया का आत्मावलोकन

अंक : 14 पृष्ठ : 16 सितंबर 2012 नयी दिल्ली

मीडिया पर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय

ढाल और तलवार की दोहरी भूमिका में लोकसंस्कृति

संवादसेतु

संपादक
आशुतोष

सह–संपादक
रवि शंकर

संपादक मंडल
नेहा जैन
सूर्यप्रकाश

कार्यालय
प्रेरणा, सी–56/20,
सेक्टर–62, नोएडा

संपर्क:
0120-2400335
mail@samvadsetu.com
वेब : samvadsetu.com

अनुरोध

संवादसेतु की इस पहल पर आपकी टिप्पणी एवं सुझावों का स्वागत है। अपनी टिप्पणी एवं सुझाव कृपया उपरोक्त ई–मेल पर अवश्य भेजें।

'संवादसेतु' मीडिया सरोकारों से जुड़े पत्रकारों की रचनात्मक पहल है। 'संवादसेतु' अपने लेखकों तथा विषय की स्पष्टता के लिए इंटरनेट से ली गई सामग्री के रचनाकारों का भी आभार व्यक्त करता है। इसमें सभी पद अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय 3

आवरण कथा
सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णय 4

परिप्रेक्ष्य
ढाल और तलवार की दोहरी भूमिका में लोकसंस्कृति 6

साक्षात्कार
आज की मीडिया में प्रौद्योगिकी तो है पर विज्ञान नहीं– सोपान जोशी 8

संस्मरण
राष्ट्रवादी पत्रकारिता के वाहक दीनदयाल उपाध्याय 11

न्यू मीडिया
न्यू–मीडिया के सामने अब भी हैं कई सवाल 13

परिचर्चा
क्या भारतीय परिप्रेक्ष्य में विदेशी मीडिया की पुष्टि अनिवार्य है? 14

विविधा
असम के पत्रकारों ने मांगी सुरक्षा 15
कोयला घोटाले में मीडिया भी नहीं है पाक साफ 15
पाकिस्तान ने नहीं दिया भारतीय संपादक को वीजा 15

मीडिया शब्दावली 16

सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने देश में भ्रष्टाचार और सरकारी खामियों को उजागर करने में मीडिया की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हुए रिपोर्टिंग से संबंधित एकमुश्त दिशानिर्देश तैयार करने से मना कर दिया। सहारा इंडिया रियल स्टेट और बाजार नियामक सेबी की याचिकाओं पर विचार करते हुए उन्होंने यह फैसला दिया। पीठ की अध्यक्षता स्वयं मुख्य न्यायाधीश एस एच कपाड़िया कर रहे थे।

सहारा और सेबी ने निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार की दुहाई देते हुए अदालत के सामने यह यचिका दाखिल की थी कि वह प्रिंट व इलैक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा न्यायालय की कार्यवाही की रिपोर्टिंग पर दिशानिर्देश तय करे। संविधान पीठ में मुख्य न्यायाधीश के अतिरिक्त न्यायमूर्ति सर्वश्री डी. के. जैन, एस. एस. निज्जर, रंजना प्रकाश देसाई, और जे. एस. खेहर शामिल थे। अदालत ने कहा कि पीड़ित पक्ष या अभियुक्त निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार को आधार बना कर रिपोर्टिंग पर कुछ समय के लिये रोक लगाये जाने की याचिका उच्च अथवा सर्वोच्च न्यायालय में दायर कर सकता है। किन्तु आदेश देने से पहले देखना होगा कि यह तर्कसंगत है अथवा नहीं। साथ ही, रिपोर्टिंग से मामला, विशेष रूप से निष्पक्ष सुनवाई प्रभावित होने का कोई वास्तविक भय है अथवा नहीं।

पीठ ने अपनी टिप्पणी में यह भी कहा कि यदि न्यायालय सभी पक्षों को सुनने के बाद इसे तर्कसंगत पाती है तो कुछ समय के लिये रिपोर्टिंग टालने के आदेश दे सकती है। यह भी रेखांकित किया कि न्यायिक प्रशासन बनाये रखने के लिये लगायी गयी रोक को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन नहीं माना जा सकता। अदालत ने कहा कि कुछ समय के लिये रिपोर्टिंग को अथवा प्रकाशन को टालने का आदेश दंडात्मक नहीं बल्कि निरोधक उपाय है।

संविधान पीठ का निर्णय भविष्य की दिशा तय करने वाला निर्णय है। इसमें मीडिया पर यह विश्वास जताया गया है कि वह आत्मनियंत्रण द्वारा अपनी खामियों को दूर कर लेगी। वस्तुतः इस विश्वास में ही लोकतंत्र के प्राण निहित हैं। मीडिया को भी यह अनुभूति होनी आवश्यक है कि इस निर्णय के पीछे के विश्वास को चोट न पहुंचे। लेकिन जिन घटनाओं को लेकर मीडिया आलोचना की शिकार हुई है उनका दोहराव साबित करता है कि मीडिया का एक वर्ग अपनी हठधर्मी छोड़ने को तैयार नहीं। घटनाओं का दोहराव भी जारी है और मीडिया का भटकाव भी। सरकार ने खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को अनुमति दी और मीडिया का एक वर्ग उसे जरूरी साबित करने में जुट गया। मनमोहन सरकार के इस साहसिक निर्णय के बाद यह स्पष्ट हो गया है कि पिछले कुछ दिनों से अंतर्राष्ट्रीय मीडिया ने और उससे उत्साहित होकर तथाकथित राष्ट्रीय मीडिया ने सरकार पर जो दबाव बनाया था उसका यह स्वाभाविक प्रतिफलन है।

हालांकि इस बीच प्रधानमंत्री ने स्वयं मोर्चा लेते हुए एक बार मीडिया को मर्यादा में रहने की सलाह दी तो सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा भी उसे लक्ष्मण रेखा न लांघने की हिदायत दी गयी। मुंबई की तर्ज पर गाजियाबाद के निकट मसूरी इलाके में किसी पवित्र पुस्तक के पन्ने फटे मिलने की अफवाह फैली और मुंबई जैसी घटना की ही पुनरावृत्ति हुई। इस घटना में भी पत्रकारों पर हमला हुआ, उनके कैमरे छीने और तोड़े गये। पत्रकारों को दौड़ा–दौड़ा कर पीटा गया।

ब्रिटेन के शाही खानदान की गोपनीयता मीडिया की उत्सुकता का विषय रही है। पापारेजी, जिसे पश्चिम में पत्रकारिता की ही एक विधा माना जाता है, अपनी पाशविक प्रवृत्ति के चलते प्रिंसेस डायना की जान ले चुकी है। इसके बावजूद अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर इस पाशविकता पर रोक नहीं लग सकी। अब उसकी पुत्रवधू के नितांत निजी क्षणों के चित्र फ्रांस के एक अखबार में छपे हैं। इस समूह के इटली संस्करण में भी यह प्रकाशित हुए हैँ। दुर्भाग्य की बात है कि यह समूह इटली के पूर्व प्रधानमंत्री बर्लुस्कोनी का है और उनकी बेटी इसका कामकाज संभालती हैँ।

इनोसेंस ऑफ इस्लाम का प्रसारण आज भी अनेक देशों में प्रतिबंधित नहीं किया जा सका है। यू–ट्यूब जैसे प्रभावी मीडिया इस बात से बिल्कुल बे–परवाह हैं कि उनके कारण तमाम देशों में अराजकता फैल गयी है। ऐसा करके वे अभिव्यक्ति की आजादी की सुरक्षा नहीं कर रहे बल्कि एक कुत्सित मानसिकता का समर्थन कर रहे हैं और नस्लभेदी एजेण्डे को हवा दे रहे हैं।

पत्रकारिता के इस पश्चिमी स्वरूप की नकल करने को आतुर भारत के कथित राष्ट्रीय मीडिया ने भी इसे पर्याप्त स्थान दिया। खास तौर पर केट की तस्वीरों पर कई–कई स्टोरी लिखी गयीं। यहां भी इसे अभिव्यक्ति की आजादी का सवाल बनाने के लिये कुछ लोग और संस्थान आमादा हैं। किन्तु लोकमंगल और राष्ट्रीय हितों को ताक पर रख कर की जाने वाली पत्रकारिता उसके आधारभूत चरित्र को ही क्षति पहुंचायेगी।

भवदीय
संपादक

मीडिया का स्वनियंत्रण बनाम बाह्यनियंत्रण और

सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णय

रवि शंकर

पिछले कुछ दिनों से मीडिया यानी कि पत्रकारिता पर अंकुश लगाए जाने की खबरें काफी चर्चा में रही हैं। सरकार जहां एक ओर इस मामले में कानून बनाए जाने की बात कह रही थी तो मीडिया इसका पुरजोर विरोध करने और आत्मानुशासन की बातें कह रहा था। इसी बीच सर्वोच्च न्यायालय के दो ऐसे फैसले आए हैं जो इस मुद्दे के दो विभिन्न किंतु महत्वपूर्ण आयामों को स्पष्ट करते हैं। पहला आयाम है मीडिया पर सरकारी नियंत्रण का और दूसरा आयाम है मीडिया के निरंकुश होने का। सर्वोच्च न्यायालय के इन दोनों निर्णयों से जहां इन दोनों आयामों को समझना सरल हो गया है, वहीं दूसरी ओर इसने सरकार और मीडिया दोनों को आत्मावलोकन करने और अपने लिए कुछ मापदंड और उन मापदंडों को लागू करने का तंत्र विकसित करने का एक अवसर प्रदान किया है।

सर्वोच्च न्यायालय का पहला निर्णय मीडिया के अनुशासन के बारे में था। सर्वोच्च न्यायालय ने मुंबई में हुई 26/11 की घटना के दौरान मीडिया विशेषकर इलैक्ट्रॉनिक मीडिया की भूमिका की आलोचना करते हुए कहा कि यह पूरी तरह गलत और अस्वीकार्य था क्योंकि इससे सुरक्षा बलों का आतंकवादियों से मुकाबला निहायत ही मुश्किल हो गया था। न्यायमूर्ति आफताब आलम और न्यायमूर्ति सीके प्रसाद की पीठ ने 26/11 मामले की लाइव रिपोर्टिंग किए जाने पर मीडिया को लताड़ लगाते लगाई और कहा कि संविधान की धारा 19 के तहत मिली हर आजादी की तरह भाषण एवं अभिव्यक्ति की आजादी पर भी कुछ युक्तियुक्त प्रतिबंध लगे हुए हैं। कोई भी हरकत जिससे किसी दूसरे को अनुच्छेद 21 के तहत मिले जीने के अधिकार का हनन होने की आशंका हो या ऐसी किसी करतूत से राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरा पैदा होने की आशंका हो, उसे कभी भी भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की आड़ लेकर सही नहीं ठहराया जा सकता।

यह तो पूरे देश ने देखा था कि जिस समय मुंबई में आतंकी हमला हुआ, देश के सभी इलैक्ट्रॉनिक चैनल अपने कैमरे लेकर वहां पहुंच गए और सभी चीजों को लाइव दिखाने की कोशिश करने लगे थे। उनके इस 'लाइव टेलीकास्ट' के कारण अंदर बैठे आतंकियों को बाहर सुरक्षाकर्मियों की वास्तविक स्थिति की सही–सही जानकारी मिलती रही और उन्होंने आनन–फानन में हमारे तीन जांबांज बहादुरों को मार गिराया। उनमें से एक ने बुलेटप्रुफ जैकेट और हेलमेट पहन रखा था, परन्तु इसकी जानकारी भी चैनल वालों ने लाइव टेलीकास्ट की थी और इसलिए आतंकियों ने उसकी गरदन पर गोली मारी। बात यहीं सामाप्त नहीं हुई। अगले दिन सवेरे जब हमला जारी ही था, एक अन्य चैनल ने यह दिखाना शुरू किया कि एक आतंकी ने उसे फोन किया है। उसने आतंकी से बातचीत दिखानी शुरू कर दी कि यह हमारा 'एक्सक्लुसिव' है। परंतु बाद में जब पता किया गया तो उसी चैनल के किसी भी संवाददाता ने उसकी सत्यता या असत्यता को तस्दीक करने से इनकार कर दिया था। हमले को नेस्तनाबूत करने के बाद जब केन्द्रीय सूचना व प्रसारण मंत्रालय ने चैनलों के साथ बैठक करके उन्हें ऐसी स्थिति में कुछ दिशा–निर्देशों का पालन करने की सलाह दी तो पत्रकारिता की भावना से ओत–प्रोत ये चैनल भड़क उठे और दो टूक जवाब देते हुए उन्होंने सरकार को कहा कि इस मामले में वे सरकार की कोई बात मानने के लिए तैयार नहीं हैं। उन्हें किसी भी प्रकार के दिशा–निर्देश स्वीकार नहीं है।

किंतु आज उसी इलैक्ट्रॉनिक मीडिया के दावों के विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि जिस तरह से सुरक्षा बलों के अभियान को चैनलों पर लाइव दिखाया गया, उससे सुरक्षा बलों का काम न केवल

काफी मुश्किल, बल्कि काफी खतरनाक और जोखिम भरा भी हो गया था। आतंकवादियों और विदेश में बैठे उनके आकाओं के बीच हुई बातचीत के प्रतिलेख का हवाला देते हुए पीठ ने कहा कि ऐसे अनगिनत उदाहरण हैं, जिससे यह सिद्ध किया जा सकता है कि आतंकवादियों के संपर्क में रहे लोग सुरक्षा बलों की हर एक गतिविधि से बाखबर थे। बातचीत के ट्रांसक्रिप्ट में एक जगह आतंकवादियों के आका अपने नुमाइंदों से बातचीत के दौरान मीडिया में आ रही एक अटकल भरी खबर का मजाक उड़ा रहे थे। इस खबर में कहा जा रहा था कि 'कुबेर' में जिस शख्स का शव मिला था वह आतंकवादी संगठन का मुखिया था, जिसे उसके साथियों ने ही नौका छोड़ने से पहले मार गिराया था।

इसके बाद न्यायालय ने मीडिया की इस दलील पर भी सवाल उठाए कि इसके लिए विनियामक तंत्र उसके भीतर से ही होना चाहिए। पीठ ने कहा कि ऐसे ही मामलों में किसी संस्था की विश्वसनीयता को परखा जाता है। इलैक्ट्रॉनिक मीडिया की ओर से किए गए मुंबई आतंकवादी हमले की कवरेज से इस तर्क को काफी नुकसान पहुंचा है कि मीडिया के लिए कोई विनियामक तंत्र इसके भीतर से ही होना चाहिए। न्यायालय ने कहा कि मुंबई पर किए गए आतंकवादी हमलों की लाइव रिपोर्टिंग जिस तरह से की गई उससे भारतीय टीवी चैनल राष्ट्रीय हित या सामाजिक हित का कोई काम नहीं कर रहे थे बल्कि वे तो राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरे में डालकर अपने वाणिज्यिक हितों को साध रहे थे। पीठ ने कहा कि टीवी चैनलों की ओर से जो शॉट और तस्वीरें दिखाई गईं, वे तब भी दिखाई जा सकती थीं जब आतंकवादियों से मुकाबला खत्म हो जाता और सुरक्षा अभियान खत्म हो गया होता।

इस निर्णय के द्वारा न्यायालय ने मीडिया के लिए एक बाह्य विनियामक तंत्र की आवश्यकता पर जोर दिया। 26/11 के हमले के मामले में इलैक्ट्रॉनिक चैनलों की भूमिका पर सवाल तो पहले भी उठ ही रहे थे, न्यायालय के इस निर्णय ने उन सवालों को ठोस आधार प्रदान कर दिया। इससे इतना तो सिद्धांततः मान लिया गया कि कम से कम राष्ट्रीय सुरक्षा और जीने के अधिकार के मामलों में रिपोर्टिंग करने में मीडिया पर नियंत्रण रखने के लिए कोई विनियामक तंत्र होना चाहिए और वह आंतरिक नहीं, बल्कि बाहर से होना चाहिए।

परंतु इसका यह अर्थ कतई नहीं लगाया जाना चाहिए कि सर्वोच्च न्यायालय ने मीडिया पर नियंत्रण के नाम पर सरकार द्वारा आज की जा रही मनमानी को स्वीकार कर लिया। वास्तव में सर्वोच्च न्यायालय का दूसरा निर्णय पहले निर्णय को पूरा करता है। यह निर्णय मुख्य न्यायाधीश एसएच कपाड़िया, जस्टिस डीके जैन, एसएस निज्जर, रंजना प्रकाश देसाई और जेएस खेहर की पांच सदस्यीय पीठ ने सहारा इंडिया रियल एस्टेट व बाजार नियामक सेबी की अर्जियों का निपटारा करते हुए सुनाया है। सहारा और सेबी ने प्रिंट और इलैक्ट्रॉनिक मीडिया की रिपोर्टिंग के बारे में दिशा निर्देश तय करने की मांग की थी। लेकिन कोर्ट ने एक सामान्य दिशा–निर्देश तय करने से मना करते हुए कहा कि पीड़ित पक्ष या अभियुक्त निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार की दुहाई देकर रिपोर्टिंग पर कुछ समय रोक के लिए उच्च या सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दाखिल कर सकता है। न्यायालय उस याचिका पर सभी पक्षों को सुनकर अगर तर्कसंगत पाती है तो कुछ समय के लिए रिपोर्टिंग टालने का आदेश दे सकती है और इसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन नहीं माना जा सकता। लेकिन इसके साथ ही न्यायालय ने यह भी कहा कि भारत में भ्रष्टाचार और सरकारी खामियों को उजागर करने में मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण है और इसलिए अदालतें रिपोर्टिंग टालने का आदेश पारित करते समय मीडिया की इस भूमिका का ध्यान रखें।

प्रेस की स्वतंत्रता और न्यायिक प्रशासन के बीच संतुलन का जिक्र करते हुए पीठ ने कहा कि किसी भी न्यायिक प्रणाली में इन दोनों के बीच संतुलन बनाना मुश्किल काम है। दुनिया भर में अदालती रिपोर्टिंग के बारे में लागू कानूनों की बात करते हुए कोर्ट ने कहा कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में प्रेस की स्वतंत्रता शामिल है और इसमें सूचना का अधिकार भी आता है, लेकिन संविधान के भाग तीन में दिया गया कोई भी मौलिक अधिकार एब्सोल्यूट यानी कि परिपूर्ण नहीं है। सभी अधिकार एक दूसरे के अधीन हैं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार भी पूर्ण नहीं है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार और निष्पक्ष व स्वतंत्र सुनवाई के अधिकार के बीच संतुलन बनाया जाना चाहिए।

हालांकि न्यायालय का यह निर्णय केवल न्यायालयीन कार्यवाही की रिपोर्टिंग के संबंध में है लेकिन इसके निहितार्थ कहीं अधिक व्यापक हैं। इस निर्णय में न्यायालय ने सबसे महत्वपूर्ण बात यह कही है कि कोई भी मौलिक अधिकार एब्सोल्यूट यानी कि परिपूर्ण नहीं है और सभी एक दूसरे के अधीन हैं। इसका सीधा अर्थ है कि एक का कर्तव्य ही दूसरे का अधिकार है। यदि सभी एक–दूसरे के हितों का परस्पर संरक्षण करेंगे, सभी के अधिकारों की रक्षा संभव है, अन्यथा इसके लिए कोई कानून बनाया जाना संभव नहीं है और इसलिए न्यायालय ने मीडिया को अपनी लक्ष्मण रेखा याद रखने के लिए कहा।

अब आवश्यकता है कि इन दोनों निर्णयों को समग्रता में देखा जाए। पहला निर्णय जहां मीडिया पर बाह्य अंकुश लगाए जाने का समर्थन करता है, वहीं दूसरा निर्णय मीडिया के आत्मानुशासन की बात करता है। ये दोनों निर्णय दिखते परस्पर विरोधी हैं परंतु यदि इनके संदर्भों को समझा जाए तो वास्तव में हैं परस्पर पूरक। न्यायालय ने कुछ मामलों में मीडिया पर बाह्य नियंत्रण की बात कही है, उनको मोटा–मोटा परिभाषित भी किया है और कुछ मामलों में मीडिया को स्वनियंत्रण का अधिकार दिया है। इनके आधार पर इन दोनों सीमाओं की पारिभाषा पर व्यापक बहस छेड़ कर एक सर्वमान्य सीमा बनाई जानी चाहिए। इस बहस में मीडिया के लोग, सरकार और कानूनविद तीनों को समावेश किया जा सकता है। यदि ऐसा किया जाता है तो इससे मीडिया के स्वनियंत्रण बनाम बाह्यनियंत्रण का बार–बार उठने वाला मामला सुलझाया जा सकता है। ■

ढाल और तलवार की दोहरी भूमिका में लोकसंस्कृति

जयप्रकाश सिंह

एक साधारण आदमी अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति अकेले नहीं कर सकता। असीमित आवश्यकताओं और सीमित व्यक्तिगत संसाधनों के बीच की विस्तृत खाई को पाटने के लिए बाजार अस्तित्व में आता है। शायद इसीलिए कुछ बाजारवाद समर्थक बुद्धिजीवी कहते हैं कि बाजार मानव के सामुदायिक जीवन का अविछिन्न हिस्सा है और बाजार के बिना मानव समाज की कल्पना नहीं की जा सकती।

एक हद तक इस बात को माना जा सकता है कि बाजार समाज की स्वाभाविक आवश्यकता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि बाजार की भूमिका राज और समाज को नियंत्रित करने तक विस्तृत है। भारत की सामुदायिक व्यवस्था बहुध्रुवीय केन्द्रों से नियंत्रित होती रही है। राज और बाजार की अपेक्षा यहां के समाज ने नियंत्रण के ढेर सारे हथियार विकसित किए थे। लेकिन पिछले कुछ समय में हुए परिवर्तनों ने राज, समाज और बाजार के अंतर्सम्बंधों को व्यापक रुप से प्रभावित किया है। दो नए कारकों ने बाजार के हाथों में इतनी असीम शक्तियां दे दी हैं कि वह राज और समाज को नियंत्रित करने की स्थिति में आ गया है। अब बाजार व्यक्ति की विचार–प्रक्रिया, आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं को तोड़ने–मरोडने की स्थिति में आ गया है।

औद्योगिक क्रांति के बाद जन्मी अतिरिक्त–उत्पादन की समस्या ने उद्योगपतियों को राजनीतिज्ञों के साथ गठजोड़ बनाने के लिए बाध्य कर दिया। क्योंकि अतिरिक्त उत्पादन की बिक्री का मामला बाजार की सीमाओं तक सीमित नहीं था। बाजार और राजनीति के इसी गठजोड़ ने उपनिवेशों को जन्म दिया। यह गठजोड़ गैरबराबरी का गठजोड़ था। प्रारम्भिक दौर में राजनीति बाजार पर हावी थी लेकिन बाद में बाजार ने राजनीति को अपने इशारों पर नचाना शुरु किया। औद्योगिकरण की कोख से जन्मी वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने राजनीति को बाजार की चेरी बना दिया है।

सूचना तकनीकी के उद्‌भव और जनमाध्यमों के तीव्र विस्तार ने भी बाजार को अकल्पनीय ताकत प्रदान कर दी है। सूचना तकनीकी के कारण अर्थशास्त्र के परम्परागत सिद्धांत ढह गए हैं। परम्परागत सिंद्धांत मांग पर आपूर्ति का था। सूचना माध्यमों के जरिए मांग का सृजन और फिर आपूर्ति का सिंद्धांत गढ़ा गया। मीडिया मार्केट के इस नेक्सस के कारण सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की अतीव विध्वंसकारी परिघटना का जन्म हुआ। यह प्रक्रिया भौतिक संसाधनों अथवा भू–क्षेत्र पर नियंत्रण के बजाय विचार और भावनाओं के नियंत्रण पर बल देती है। बाजार सूचना तंत्र का सहारा लेकर व्यक्ति की प्राथमिकताओं एवं आवश्यकताओं को तोड़–मरोडकर मानसिक गुलामी की बेड़ियों में जकड़ देता है।

बाजार के हाथ आयी इन दो ताकतों के कारण मानव तथा मानवता दोनों के समक्ष गम्भीर खतरे पैदा हो गए हैं। इसी कारण, संवेदनशील बुद्विजीवियों का एक वर्ग बाजार का प्रतिपक्ष तलाशने में लगा हुआ है। बाजार के प्रतिपक्ष को लेकर बुद्विजीवियों में सर्वसम्मति नहीं बन पायी

है। कुछ लोग साहित्य को बाजार का प्रतिपक्ष मानते हैं, कुछ वैज्ञानिक दृष्टिकोण को, कुछ संयुक्त परिवार व्यवस्था को तो कुछ आंचलिक लोकसंस्कृति को। लेकिन अधिकांश बुद्विजीवियों को लोकसंस्कृति में ही बाजार के सर्वाधिक संभावनाशील और सशक्त प्रतिपक्ष नजर आता है। साहित्य की अपनी सीमाएं हैं, उसकी पहुंच समाज के एक सीमित हिस्से तक है। साहित्यजग में पाए जाने वाले विचार और कर्मों के बीच की दूरी भी साहित्य को व्यावहारिक धरातल पर प्रभावी बनाने से रोक देता है। मनुष्य मूलतः भावनाओं से नियंत्रित होने वाला प्राणी है, इसीलिए सभी मनुष्यों से तार्किक निर्णय लेने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। शहरीकरण और औद्योगीकरण के कारण संयुक्त परिवार व्यवस्था खुद अस्तित्व के संकट से जूझ रही है।

लोकसंस्कृति साहित्य, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और संयुक्त परिवार व्यवस्था की अपेक्षा बाजारु बहाव का सामना अधिक सक्षमता और बेहतर ढंग से कर सकती है। लोक संस्कृति से आशय परिवेश और प्रकृति के साहचर्य से उपजी जीवनशैली, जीवनदर्शन, मान्यताएं, परम्पराएं एवं सामूहिक अनुभवों से है। इसका विकास सैकड़ों हजारों साल में एक विशेष भौगोलिक परिवेश में रहने वाले व्यक्तियों की आवश्यकताओं, अपेक्षाओं और भौगोलिक परिवेश से उपजी परिस्थितियों के सतत संवाद से होता है। प्रकृति से जुड़ाव लोक. संस्कृति की आधारभूमि है और सहजता तथा स्थानीयता इसकी प्राणवायु है। लोकसंस्कृति में बनावटी आवश्यकताओं के बजाय सहज और स्वाभाविक आवश्यकताओं पर आधारित होती है। इस कारण लोकसंस्कृति में विश्वास करने वाले समाज में अंधाधुंध उपभोक्तावाद के लिए बहुत 'स्पेस' नहीं होता। और बाजार के विस्तार की सीमित संभावनाएं ही बन पाती हैं।

वैश्वीकरण और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के वर्तमान दौर में लोकसंस्कृति मानव समाज के कल्याण की दोहरी भूमिका निभा सकती है। सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के हवाई हमले को रोकने में यह छतरी का काम करती है और परम्परागत जड़ों से जोड़े रखती है। इस तरह यह ढाल का काम करती है। लोगों को जब अपनी मूल आवश्यकताओं का ज्ञान होता है तो उन पर तुलनात्मक अभाव का प्रभाव नही काम करता। लोक संस्कृति लोगों को उनकी मूल आवश्यकताओं के बारे में सचेत करती है और वैचारिक भटकाव को रोकती है।

आर्थिक दृष्टि से देखें तो लोक–संस्कृति में निहित परम्परागत ज्ञान हमारे लिए लाभ का सौदा साबित हो सकती है। पेटेंट प्रणाली के वर्तमान दौर में लोकसंस्कृति में निहित अनुभवों और मान्यताओं का आर्थिक दोहन किया जा सकता है। लोक संस्कृति के हथियार से नई आर्थिक संभावनाओं का सृजन किया जा सकता है। हल्दीघाटी की द्वितीय लड़ाई के नाम से प्रसिद्ध भारत सरकार और अमेरिकी कम्पनी के बीच हल्दी के पेटेंट को लेकर हुआ विवाद इसका ताजा उदाहरण है। हल्दी के घावरोधी के गुणों के बारे में एक निरक्षर भारतीय गृहणी भी जानती है। आज भी चोट लगने पर घर के बड़े बुजुर्ग हल्दी का लेप लगाने अथवा गर्म दूध के साथ हल्दी का चूर्ण लेने को कहते हैं। लेकिन अमेरिकी कम्पनी का दावा था कि इससे पहले हल्दी के घावरोधी गुणों का ज्ञान किसी को नहीं था। उसकी यह खोज सर्वथा नवीन है। बाद में आयुर्वेदिक शास्त्रों का सहारा लेकर भारतीय वैज्ञानिकों ने यह साबित कर दिया कि भारत में हल्दी के घावरोधी गुणों के बारे में बहुत पहले पता लगा लिया गया था। और इसी के आधार पर अमेरिकी कम्पनी को प्राप्त पेटेंट रद्द हो गया। बाद में राष्ट्रीय परम्परागत ज्ञान डिजिटल लायब्रेरी का निर्माण कर सरकार ने जड़ी–बूटियों से जुड़े भारतीय ज्ञान को सहेजने का सराहनीय काम किया और आर्थिक दृष्टि से अपने हितों की रक्षा का पुख्ता इंतजाम भी। इस लायब्रेरी में 36000 से अधिक आयुर्वेदिक सूक्तों का संग्रह किया गया है।

दुर्भाग्य से, हमारी सरकार लोकसंस्कृति में निहित संभावनाओं को ठीक ढंग से पहचान नहीं पा रही है। आज भी इसको पोंगापंथी और पिछड़े लोगों से जोड़कर देखा जाता है। परम्पराओं को हेयदृष्टि से देखना और भारतीयता का भाव पैदा करने वाले तत्वों को नकारना नीतिनिर्माताओं और बुद्धिजीवियों के लिए फैशन बन गया है। इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति को देखकर प्रसिद्ध हिंदी कवि गोपालदास नीरज की दो पंक्तियां याद आ जाती है –

हम इतने तल्लीन थे, तैयारियों में जाने के।
वो हमारे पास थे, उन्हें देखने का वक्त न था।

हमको अपनी संभावनाओं को नए सिंह से तलाशना होगा। तलाश की इस प्रक्रिया में लोकसंस्कृति से जुडी संभावनाओं से मुंह फेरना आत्मघात करने जैसा होगा। क्योंकि लोक–संस्कृति में बचाव और आक्रमण दोनों की संभावनाएं मौजूद हैं। यह एक ढाल और तलवार दोनों की भूमिका निभा सकने में सक्षम है। मीडिया इस सक्षम भारतीय हथियार के प्रति आम जन में आत्मविश्वास भर कर वर्तमान वैश्विक सांस्कृतिक–संघर्ष में भारत को निर्णायक भूमिका प्रदान कर सकता है। ■

आज की मीडिया में प्रौद्योगिकी तो है पर विज्ञान नहीं– सोपान जोशी

पत्रकारिता में आज विज्ञान एवं पर्यावरण का स्थान घटता जा रहा है। पर्यावरण की तो कुछ कवरेज फिर भी दिख जाती है किन्तु विज्ञान के नाम पर केवल विशुद्ध टेक्नोलॉजी ही मिलती है। ऐसे ही व कुछ अन्य मुद्दों को लेकर जल, थल एवं मल विषयों पर काम करने वाले पत्रकार सोपान जोशी से बातचीत के कुछ अंश :

पत्रकारिता में आप कैसे आए और आपके क्या अनुभव रहें?

मैं पत्रकार आकस्मिक ही बना। 1996 में एम.ए. करने के बाद मेरे एक दोस्त ने बताया कि मुम्बई में एशियन एज में पत्रकारों की जरूरत है। मैं वहां इंटरव्यू के लिए गया तो मुझे वहां ट्रेनी रिपोर्टर के तौर पर रख लिया गया। वहां तीन महीने काम करने के बाद मैंने इंडियन एक्सप्रेस में काम किया। कुछ समय बाद मुझे महसूस हुआ कि दैनिक समाचार पत्र की पत्रकारिता समझ बनाने का मौका नहीं देती जिसके कारण मैं किसी पत्रिका में काम करना चाहता था जहां अध्ययन का कुछ समय मिले। इसके बाद मैंने कई पत्रिकाओं में काम किया। सबसे ज्यादा समय पर्यावरण की एक पत्रिका 'डाउन टू अर्थ' में बिताया। मैंने तहलका में भी कार्य किया। सबसे ज्यादा मैंने पर्यावरण व विज्ञान विषयों पर कार्य किया है।

पत्रकारिता के दौरान आपके क्या अनुभव रहें?

पत्रकारिता के दौरान सबसे बड़ा अनुभव रहता है अलग–अलग लोगों से मिलना और उनको करीब से जानना। मेरी समझ में हर पत्रकार एक कथाकार होता है। मिथ्य या साहित्य में जो माल मसाला होता है वो कल्पना से आता है। पत्रकारों की लिखाई के लिए उसका माल मसाला तथ्यों से आता है और उसको तथ्यों में ही रहना पड़ता है। इस एक अंतर को हटा दें तो पत्रकार भी कथाकार होता है। कथा कहना और सुनना अपने आप में नशा होता है। जिसको इस नशे की आदत हो गई, वो इससे दूर नहीं रह सकता। मुझे नहीं लगता कि मैं कभी भी पत्रकारिता से दूर रह पाऊंगा फिर चाहे वह दैनिक समाचार या पत्रिका के लिए हो या फिर किसी किताब के लिए किए गए शोध के रूप में हो। यह सब पत्रकारिता के रूप ही हैं जिसके लिए नए–नए लोगों से मिलना होता है और इससे आपका दायरा बड़ा होता रहता है। पत्रकारिता का मुझे यह प्रसाद मिला कि मेरा दायरा काफी बड़ा होता गया जो अन्य काम में संभव नहीं था।

आमतौर पर पत्रकारों का रूझान राजनीतिक विषयों पर अधिक होता है किन्तु आपने पर्यावरण विषय चुना। इसके पीछे क्या कारण है?

राजनीतिक पत्रकारिता करने वाले पत्रकारों को अपना विवेक खोते हुए मैंने बहुत देखा है। कहीं न कहीं पत्रकार को सत्ता में रहने वाले और ताकतवर लोगों के आसपास घूमने से यह गुमान हो जाता है कि वो भी ताकतवर है और उनके पास भी सत्ता है। इसके बाद दो ही रास्ते होते है जिसमें से एक पतन का होता है जहां पत्रकार पाठकों के बजाय अपना, अपने प्रकाशकों और अपने मालिकों का हित साधते हैं। पेड न्यूज आज बड़े पैमाने पर फैल चुका है और इसका सीधा असर हुआ है कि पत्रकारों की विश्वसनीयता बहुत कम हुई है। जब मैंने पत्रकारिता की शुरूआत की थी तब लोग पत्रकार को अपना मसीहा मानते थे क्योंकि उन्हें विश्वास था कि यह हमारी बात को आगे पहुंचाएगा और दुनिया के सामने लाएगा किंतु पत्रकारों का ये सम्मान आज चारों ओर से कटता जा रहा है। लोग पत्रकारों को आजकल व्यावसायिक धंधेबाज ज्यादा मानते हैं। दूसरा रास्ता अपने प्रभाव के दुरूपयोग का है। दोनों ही स्थितियों में, चाहे वह सौदेबाजी की पत्रकारिता हो या फिर अपने प्रभाव का दुरूपयोग करने की बात हो, दोनों ही पतन के रास्ते हैं। दोनों में ही पत्रकारिता की गति बिगड़ेगी। ये मुझे बहुत जल्दी समझ आ गया। मैंने राजनीतिक पत्रकारिता भी की है और इस दौरान महसूस हुआ है कि राजनीति की पत्रकारिता में जितना अज्ञान है उतना दूसरे विषयों की पत्रकारिता में नहीं है,

क्योंकि राजनीति की दुनिया में अटकलें सबसे ज्यादा है और यहां अंधेरे में तीर चलाने का काम सबसे ज्यादा होता है। इसकी तुलना में मैंने पाया कि पर्यावरण और विज्ञान पर लिखने पर आपके पास तथ्य ज्यादा स्पष्ट रहते हैं। आप पाएंगे कि राजनीति पर लिखने वालों के विचार ज्यादा उलझे हुए रहते हैं। इन्हीं सब कारणें से मेरी राजनीतिक पत्रकारिता में कोई रूचि नहीं थी। संपादकों के कहने पर मैंने राजनीति पर भी लिखा किंतु मेरा रूझान सामाजिक विषयों पर अधिक था।

मुख्य धारा की मीडिया से गांधी शांति प्रतिष्ठान में आने के पीछे क्या कारण थे?

पर्यावरण विषय में मेरा रूझान गांधी शांति प्रतिष्ठान से निकले प्रकाशनों के माध्यम से ही हुआ था। यहां बचपन से आना जाना रहा है और कई शोधों के लिए मुझे यहां के लोगों से मार्गदर्शन मिला है। उनका कहना था कि ''जब आपका शोध में रूझान है तो यहां आकर बैठो, यहां वो आजादी मिलेगी जो तुम चाहते हो और जितना सहयोग चाहते हो वो सब मिलेगा।'' मेरे लिए यह बहुत सहज निर्णय था क्योंकि मैं पत्रकारिता में करियर के नाते नहीं आया था। गांधी शांति प्रतिष्ठान में काम करना एक तरह से घर लौटने जैसा है। रही बात मुख्य धारा की तो कौन सी धारा मुख्य है और कौन सी कुख्य, यह सब हम अपने लिए खुद तय करते हैं।

गांधी जी की पत्रकारिता से लेकर अब तक पत्रकारिता में क्या परिवर्तन आए हैं?

हमारे यहां पत्रकारों के लिए विशेष सम्मान रहा है जो दुनिया में और कहीं नहीं मिलेगा। उसका कारण यह है कि हमारे यहां पत्रकारिता का उदय आजादी की लड़ाई के कारण हुआ था। लोग यह मानते थे कि हर पत्रकार समाज के लिए काम करने वाला आदमी है। यह बहुत समय तक चलता रहा लेकिन पिछले 20 सालों में पत्रकारिता में तेजी से बदलाव आया है। हर चीज का दौर होता है और यह दौर व्यवसाय का, करियर का दौर है। इस दौर में बहुत सारे लोग व्यावसायिक पत्रकारिता कर रहे हैं जबकि कुछ ही पत्रकार ऐसे हैं जो पुरानी पत्रकारिता के रास्ते पर चलते हैं। फर्क यह है कि वो हमको दिखते नहीं हैं। आजकल मीडिया की दुनिया में दायरा बहुत छोटा हो गया है। उसमें अपनी चवन्नी बढ़ाना और अपने मूल्यों की कीमत पर काम सुधारना मान्य हो गया है। मेरे कई सारे दोस्त हैं जो मानते हैं कि अगर उन्हें पैसा कमाने की मजबूरी नहीं होती तो वह ऐसी पत्रकारिता नहीं करते।

आज मीडिया द्वारा पर्यावरण और कृषि विषयों के कवरेज के सम्बन्ध में आपका क्या मत है?

अगर आप पर्यावरण और कृषि के बारे में जानकारी रखना चाहते हैं तो आपको सामान्य अखबारों की बजाय बिजनेस स्टैंडर्ड, इकोनॉमिक्स टाइम्स जैसे वाणिज्य के अखबार पढ़ने होंगे। उन्हें बाजार का अध्ययन करना होता है और इसलिए वे इन खबरों पर नजर भी रखते हैं। समस्या यह है कि मुख्य धारा के कहे जाने वाले अखबार वही छापना चाहते हैं जो पाठक चाहता है। अब होता यह है कि वे यह मान लेते हैं कि पाठक यह पढ़ना चाहता है और दूसरी ओर अखबार में जो कुछ भी छपता है, पाठक उसे पढ़ने के लिए मजबूर होता है। बड़े शहरों में रहने वाले कुछ अमीर लोगों की क्रय शक्ति के कारण विज्ञापन मिलते हैं तो अखबार के लिए वही मुख्यधारा बन जाते हैं। यह पर्यावरण और विज्ञान की पत्रकारिता में साफ दिखेगा। विज्ञान तो अखबारों और टेलीविजन में मिलेगा ही नहीं, मिलेगी तो विशुद्ध टेक्नोलॉजी जिसमें आपको बताया जाएगा कि यह नई वस्तु आधुनिक और सुविधाजनक है। वास्तव में ये खबरें भी विज्ञापन का विस्तार ही होती हैं। पर्यावरण की खबरें आजकल थोड़ी बहुत दिखने लगी हैं लेकिन वो भी एक सीमित दायरे में है। इसके पीछे कारण यह है कि

पत्रकारों ने भी पर्यावरण के साथ वही किया है जो सरकार ने किया। दोनों ने इसके लिए अलग विभाग बना दिया, परंतु पर्यावरण एक अलग विभाग का विषय नहीं है। जमीन का हर सौदा, पानी पर निर्णय, नए उद्योग की स्थापना सबका पर्यावरण से लेना–देना है। अलग विभाग बना देने से केवल खानापूर्ति मात्र ही होती है।

पत्रकारिता की शुरूआत मुद्दों या एक बड़े उद्देश्य को लेकर हुई। किन्तु वर्तमान में लगता है कि आज की पत्रकारिता मुद्दों से भटक रही है, हट रही है और उसके सरोकार झीज रहे हैं। क्या ऐसा है और क्यों?

जैसे–जैसे हम ऐसे दौर में जा रहे हैं जहां उपभोग ही सबसे जरूरी है, उसमें सरोकार शब्द भी उपभोग के साथ चलता है। आप पाएंगे कि कई बार सामाजिक काम की बात भी इस तरह होती है जो दूसरे लोगों के मन पर बोझा ज्यादा बनती है। सामाजिक काम को सरल, सहज और आकर्षक रूप से करने वाले कम ही मिलेंगे और जो हैं वो आमतौर पर मीडिया से बचकर रहते हैं। इसके पीछे कारण यह है कि मीडिया अब एक तरह से डुगडुगी वाला तमाशा बन गया है जिसमें मदारी और बंदर ज्यादा है और उसमें जो आदमी सरल व सहज रूप से काम करना चाहता है वो वहां खड़ा भी नहीं होगा क्योंकि उसको उस तमाशे में गरिमा नहीं दिखती। आप पाएंगे कि टीवी पर बोलने वाले लोग बंदर और मदारी जैसे संबंध रखते हैं। डुगडुगी बजाने पर एक जना बोलना शुरू कर देता है और फिर दोबारा डुगडुगी बजाने पर दूसरा बोलने लगता है। हम ऐसा भी नहीं मान सकते कि हमारे समाज में अच्छा काम नहीं हो रहा है लेकिन अच्छा काम करने वाले मीडिया से बचकर रहते हैं। उनको लगता है कि मीडिया का वायरस अपने को लग गया तो अपने काम का महत्व कमजोर पड़ जाएगा।

फिर लोगों को अच्छे कामों का कैसे पता चले?

अच्छे लोग आपको हर जगह मिल जाएंगे। यह आप पर निर्भर करता है। अगर आप अच्छा काम ढूंढने निकलेंगे तो आपको मोची, ठेला लगाने वाले जैसे लोगों के पास भी अच्छा काम मिल जाएगा किन्तु यदि आपकी आंखे केवल अगला तहलका, अगला घोटाला या कोई राष्ट्रीय हीरो ढूंढ रही है जिसे दो महीने बाद लोगों की नजरों में गिरा दिया जाए तो आपको वो ही मिलेगा।

आप जिस दौर की बात कर रहे हैं क्या उससे बाहर आने की जरूरत है और यह कैसे संभव है?

जब तक जीवन होता है, तब तक उम्मीद होती है। आज की खराबियों के कारण जीना तो नहीं छोड़ा जा सकता। लोग इसमें रास्ता निकालते हैं और आज भी कई तरह के लोग विभिन्न तरीकों से अच्छा कार्य कर रहे हैं। बात केवल यह है कि अगर किसी को अच्छा काम करना हो तो चुपचाप करना पड़ता है। पहले अच्छे काम करने वाले लोग दूसरों को बताते थे लेकिन आज के दौर में किसी को बताने से काम बिगड़ने की ज्यादा संभावना रहती है। मैं कई ऐसे लोगों को जानता हूं जो अच्छा कार्य कर रहे हैं और उनके पास जब पत्रकार स्टोरी के लिए पहुंचते हैं तो वह मना कर देते हैं। हाल ही में गीतिका मर्डर केस के दौरान प्रतिदिन मीडिया द्वारा पता चल रहा था कि पुलिस आगे क्या करना चाहती है। इसका अर्थ है कि अपराधी को केवल रोज अखबार पड़ना होगा और उसे पुलिस कार्रवाई के बारे में पता चल जाएगा। अगर पुलिस वाला अच्छे से जांच पड़ताल करना चाहेगा तो वह पहले से ही किसी को भी बताएगा नहीं कि वो क्या करने वाला है। इसी प्रकार अच्छा कार्य करने वाले भी बहुत है किन्तु वो अपना काम प्रचार–प्रसार के लिए नहीं करते।

तो क्या यह मान लें कि मीडिया से भला नहीं होने वाला?

नहीं ऐसा नहीं है। देखिए मीडिया हमारे परिवार का हिस्सा है और परिवार का कोई व्यक्ति भटक जाए तो हम उसे छोड़ नहीं देते और न ही उसकी गलतियों को सही ठहराते हैं। हम इंतजार करते हैं उसे अपनी गलती महसूस हो जाए। अगर आपका उससे प्रेम संबंध है तो वह देर सबेर अपनी गलती समझकर लौट आता है। यही रवैया हमें अपने उन मित्रों के प्रति रखना होगा जो मीडिया में हैं और आगे आने वाले समय में मीडिया में कुछ अच्छा कार्य अवश्य होगा।

अंग्रेजी पत्रकारिता और भाषाई पत्रकारिता में क्या अंतर है?

अंग्रेजी मीडिया में पैसा ज्यादा है इसलिए सुविधाएं ज्यादा है। उनके पास यह मौका रहता है कि वो ज्यादा वस्तुनिष्ठ रह सकें। भारतीय भाषाओं के पत्रकार उतने वस्तुनिष्ठ नहीं मिलेंगे। लेकिन अगर आपको करीब से भारत को समझना होगा तो अंग्रेजी पत्रकारिता से नहीं समझ सकते। वो आपको भारतीय जीवन का दर्शन नहीं कराती।

आज पत्रकारिता के छात्रों में जो अध्ययन की प्रवृत्ति घटती जा रही है उस पर आपकी क्या राय है? उसे बहाल करने के लिए क्या करना चाहिए?

इसे बहाल करना इतना आसान नहीं है। इसका कारण यह नहीं है कि हमारे बच्चों में या युवकों में कोई कमी है। हमारी शिक्षा व्यवस्था इतनी खराब है कि वह कोड़े मार–मारकर पढ़ाती है। बच्चा चलना सीखता नहीं कि उससे पहले ही उसकी पीठ पर बस्ता लाद दिया जाता है। इसी कारण बहुत कम उम्र से ही बच्चे पढ़ाई को बोझ समझने लगते हैं। अगर बोझ नहीं हो तो बच्चों से ज्यादा कौतुहल तो किसी में नहीं होता। कमी हमारी शिक्षा व्यवस्था में है और उसे सुधारे बगैर यह ठीक नहीं होगी।

प्रस्तुति– नेहा जैन

राष्ट्रवादी पत्रकारिता के वाहक दीनदयाल उपाध्याय

सूर्यप्रकाश

भारत में पत्रकारिता और राष्ट्रवाद एक ही धारा में प्रवाहित होने वाले जल के समान हैं। भारतीय पत्रकारिता ने सदैव राष्ट्रवाद को ही मुखरित करने का कार्य किया है। पत्रकारिता के इसी राष्ट्रवादी प्रवाह को गति देने वाले पत्रकारों में एक महत्वपूर्ण नाम पं. दीनदयाल उपाध्याय का भी है। भारत की राजनीति को एक ध्रुव से दो ध्रुवीय करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाले दीनदयाल उपाध्याय ने पत्रकारिता को अपने विचारों के प्रसार का माध्यम बनाया था। पत्रकारिता किस प्रकार से जनमत निर्माण करने में सहायक हो सकती है, यह दीनदयाल जी ने बखूबी समझा था।

दीनदयाल जी का जन्म आश्विन कृष्ण त्रयोदशी, सोमवार सम्वत 1973 को, ईस्वी अनुसार 25 सितंबर 1916 को राजस्थान के धनकिया नामक ग्राम में हुआ था। उनका जन्म ननिहाल में हुआ था। जबकि उनका पैतृक निवास मथुरा के फराह नामक गांव में है। उनके पिता का नाम भगवती प्रसाद उपाध्याय तथा माता का नाम रामप्यारी था। परिवार में दीनदयाल जी से छोटा एक भाई और था जिसका नाम शिवदयाल था। किंतु, दीनदयाल जी को परिवार का स्नेह अधिक समय तक न मिल सका। बाल्यावस्था में ही माता–पिता की मृत्यु होने के कारण पारिवारिक शून्यता में ही उन्हें जीवन व्यतीत करना पड़ा। जब माता–पिता उनसे बिछड़े तब उनकी आयु मात्र आठ वर्ष ही थी। दुर्भाग्य ऐसा था कि कुछ ही समय बाद दीनदयाल जी के भाई शिवदयाल की भी निमोनिया से पीड़ित होने के कारण मृत्यु हो गई।

माता–पिता के अभाव में उनका पालन–पोषण उनके मामा ने किया जो राजस्थान के गंगापुर रेलवे स्टेशन पर मालगार्ड के रूप में कार्यरत थे। अपनी प्रारंभिक शिक्षा दीनदयाल जी ने गंगापुर में ही पूर्ण की। उसके बाद उन्होंने सीकर, कानपुर एवं आगरा आदि स्थानों पर रहकर आगे की पढ़ाई पूरी की। कॉलेज की पढ़ाई के दौरान ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संपर्क में आए और पूरी तन्मयता से संघ कार्य में जुट गए। कॉलेज की पढ़ाई के बाद वे किसी नौकरी अथवा व्यापार में संलग्न न होकर संघ कार्य में ही रम गए। उनके मामा ने उनसे शादी का कई बार आग्रह किया लेकिन वे बड़ी ही चालाकी से शादी के प्रस्तावों को नकार देते थे। शायद राष्ट्र की सेवा का व्रत लेकर ही वे जन्मे थे, जिस कारण सभी सांसारिक बंधनों से दूर वे केवल भारत माता के बंधन में ही रहे। उन्होंने भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्र के लिए अथक कार्य किया। विवाह न करने को लेकर वे बड़े ही तर्कपूर्ण ढंग से अपनी बात कहा करते थे। इस संबंध में उन्होंने अपने विचार 'जगद्गुरू शंकराचार्य' में व्यक्त किए हैं–

''हे मां पितृऋण है और उसी को चुकाने के लिए मैं सन्यास ग्रहण करना चाहता हूं। पिताजी ने जिस धर्म को जीवन भर निभाया यदि वह धर्म नष्ट हो गया तो बताओ मां! क्या उन्हें दुख नहीं होगा ? उस धर्म की रक्षा से ही उन्हें शांति मिल सकती है और फिर अपने बाबा उनके बाबा और उनके भी बाबा की ओर देखो। हजारों वर्ष का चित्र आंखों के समक्ष उपस्थित हो जाता है। भगवान श्रीकृष्ण ने धर्म की रक्षा के लिए स्वयं के जीवन को दांव पर लगा दिया, कौरव–पांडवों में युद्ध करवाया। अपने जीवन में वे धर्म की स्थापना कर गए, पर लोग धीरे–धीरे भूलने लगे। शाक्यमुनि के काल तक फिर धर्म में बुराईयां आ गईं। उन्होंने भी बुराईयों को दूर करने का प्रयत्न किया, पर अब आज उनके सच्चे अभिप्राय को भी लोग भूल गए हैं। मां! इन सब पूर्वजों का हमस ब पर ऋण है अथवा नहीं?

यदि हिन्दू समाज नष्ट हो गया, हिन्दू धर्म नष्ट हो गया तो फिर तू ही बता मां, कोई दो हाथ दो पैर वाला तेरे वश में हुआ तो क्या तुझे पानी देगा? कभी तेरा नाम लेगा?''

ऐसे समय में जब देश को सशक्त राजनीतिक विकल्प एवं विपक्ष की आवश्यकता थी, तब दीनदयाल उपाध्याय ने श्यामा प्रसाद मुखर्जी के साथ मिलकर देश की राजनीति को दो ध्रुवीय करने का कार्य किया था। उन्होंने राजनीति को समाज कल्याण के मार्ग के रूप में चुना था। एकात्म मानववाद के रचयिता दीनदयाल उपाध्याय ने गांधी के विचार को पुनःव्याख्यायित करते हुए अंत्योदय की बात की।

दीनदयाल जी ने अपने विचारों को पत्रकारिता के माध्यम से

जन–जन तक पहुंचाने का कार्य किया था। वह पत्रकारिता जो आजादी के उपरांत अपने लिए किसी लक्ष्य अथवा सन्मार्ग की तलाश में थी। उसे दीनदयाल उपाध्याय अपनी पत्रकारिता के माध्यम से राह दिखाने का कार्य किया था। सन् 1947 में दीनदयाल जी ने राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड की स्थापना की थी। जिसके अंतर्गत स्वदेश, राष्ट्रधर्म एवं पांचजन्य नामक पत्र प्रकाशित होते थे। राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड ने वचनेश त्रिपाठी, महेन्द्र कुलश्रेष्ठ, गिरीश चन्द्र मिश्र, अटल बिहार वाजपेयी, राजीव लोचन अग्निहोत्री जैसे श्रेष्ठ पत्रकारों को तैयार किया था। पं. दीनदयाल ने 'पांचजन्य', 'राष्ट्रधर्म' एवं 'स्वदेश' के माध्यम से राष्ट्रवादी जनमत निर्माण करने का महत्वपूर्ण कार्य किया था। उनके लेख पांचजन्य के घोष वाक्य के अनुरूप ही राष्ट्र जागरण का शंखनाद करते थे। राष्ट्रीय एकता के मर्म को समझाते हुए उन्होंने लिखा था–

''यदि हम एकता चाहते हैं तो भारतीय राष्ट्रीयता जो हिंदू राष्ट्रीयता है तथा भारतीय संस्कृति जो हिंदू संस्कृति है उसका दर्शन करें। उसे मानदंड बनाकर चलें। भागीरथी की पुण्यधाराओं में सभी प्रवाहों का संगम होने दें। यमुना भी मिलेगी और अपनी सभी कालिमा खोकर गंगा में एकरूप हो जाएगी।'' (पांचजन्य, 24 अगस्त, 1953)

दीनदयाल उपाध्याय ने देश में बदलाव के लिए नारे एवं बेवजह प्रदर्शनों को कभी प्राथमिकता नहीं दी। देश की समस्याओं के निवारण के लिए वह पुरूषार्थ को ही महत्वपूर्ण मानते थे जिसका उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा–

''आज देश के व्याप्त अभावों की पूर्ति के लिए हम सब व्यग्र हैं। अधिकाधिक परिश्रम आदि करने के नारे भी सभी लगाते हैं। परंतु नारों के अतिरिक्त वस्तुतः अपनी इच्छानुसार सुनहले स्वप्नों, योजनाओं तथा महत्वाकांक्षाओं के अनुकूल देश का चित्र निर्माण करने के लिए उचित परिश्रम और पुरूषार्थ करने को हममें से पिचानवे प्रतिशत लोग तैयार नहीं है। जिसके अभाव में यह सुंदर–सुंदर चित्र शेखचिल्ली के स्वप्नों के अतिरिक्त कुछ और नहीं'' (पांचजन्य, आश्विन कृष्ण 2, वि. सं. 2007)

सन 1947 में भारत राजनीतिक रूप से स्वतंत्र हो गया था। किंतु, अंग्रेजों के जाने के पश्चात भी औपनिवेशिक संस्कृति के अवशेष भारत के तथाकथित बुर्जुआ वर्ग पर हावी रहे। इस मानसिकता को राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्थन में बाधक बताते हुए दीनदयाल उपाध्याय ने लिखा था–

''राष्ट्रभक्ति की भावना को निर्माण करने और उसको साकार स्वरूप देने का श्रेय भी राष्ट्र की संस्कृति का ही है तथा वही राष्ट्र की संकुचित सीमाओं को तोड़कर मानव की एकात्मता का अनुभव कराती है। अतः संस्कृति की स्वतंत्रता परमावश्यक है। बिना उसके राष्ट्र की स्वतंत्रता निरर्थक ही नहीं, टिकाऊ भी नहीं रह सकेगी।'' (पांचजन्य, भाद्रपद कृष्ण 9, वि. सं. 2006)

दीनदयाल उपाध्याय का स्पष्ट मत था कि राष्ट्रीय एकता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए राष्ट्र की सांस्कृतिक एकात्मता भी आवश्यक है। अपने विचारों को उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त किया था–

''भारत में एक ही संस्कृति रह सकती है, एक से अधिक संस्कृति का नारा देश के टुकड़े–टुकड़े करके हमारे जीवन का विनाश कर देगा। अतः आज लीग का द्वि–संस्कृतिवाद, कांग्रेस का प्रच्छन्न द्विसंस्कृतिवाद तथा साम्यवादियों का बहुसंस्कृतिवाद नहीं चल सकता। आज तक एक संस्कृतिवाद को संप्रदायवाद कहकर ठुकराया गया किंतु अब कांग्रेस के विद्वान भी अपनी गलती समझकर इस एक संस्कृतिवाद को अपना रहे हैं। इसी भावना और विचार से भारत की एकता तथा अखंडता बनी रह सकती है तथा तभी हम अपनी संपूर्ण समस्याओं को सुलझा सकते हैं।'' (राष्ट्रधर्म, शरद पूर्णिमा, वि. सं 2006)

भारत में एक ही संस्कृति रह सकती है, एक से अधिक संस्कृति का नारा देश के टुकड़े–टुकड़े करके हमारे जीवन का विनाश कर देगा। अतः आज लीग का द्वि–संस्कृतिवाद, कांग्रेस का प्रच्छन्न द्विसंस्कृतिवाद तथा साम्यवादियों का बहुसंस्कृतिवाद नहीं चल सकता।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने राष्ट्रवादी विचारधारा के प्रचार–प्रसार हेतु राष्ट्रधर्म प्रकाशन की स्थापना की थी। अपने इस ध्येय पथ पर वे संपूर्ण जीवन अनवरत चलते रहे। जीवन में अनेकों दायित्वों का निर्वाह करते हुए भी दीनदयाल जी ने अपने पत्रकारीय जीवन के प्रवाह को कहीं रूकने नहीं दिया था। स्वतंत्रता के पश्चात जब भारत का पत्रकारिता जगत लक्ष्यविहीन अनुभव कर रहा था, तब दीनदयाल उपाध्याय ने पत्रकारिता को उसका ध्येय मार्ग दिखलाने का कार्य किया था।

हिंदुत्व, भारतीयता, अर्थनीति, राजनीति, समाज–संस्कृति आदि अनेकों महत्वपूर्ण विषयों पर उनका गहरा अध्ययन था। उन्होंने पत्रकारिता के अलावा अनेकों पुस्तकें भी लिखीं जैसे– राष्ट्र चिंतन, सम्राट चन्द्रगुप्त, भारतीय अर्थनीति– विकास की एक दिशा, एकात्म मानववाद आदि। यह पुस्तकें राष्ट्रहित में जीवन जीने की प्रेरणा देती हैं।

11 फरवरी, सन 1968 को मुगलसराय रेलवे स्टेशन के करीब वे मृत पाए गए। उनकी मृत्यु का कारण आज भी संदिग्ध है। दीनदयाल उपाध्याय ने राष्ट्रवाद के प्रवाह को जिस प्रकार आगे बढ़ाया था वह अनुकरणीय है।

■

न्यू–मीडिया के सामने अब भी हैं कई सवाल

न्यू–मीडिया के योगदान और उसकी संभावनाओं के बारे में पिछले कुछ दिनों में बहुत चर्चाएं हुई हैं। मीडिया के नए अवतार को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, सामाजिक जागरूकता में सहायक एवं मुख्यधारा की मीडिया का बेहतर विकल्प बताया जा रहा है। यह सही भी है कि न्यू–मीडिया ने नागरिक पत्रकारिता की अवधारणा को मजबूत किया एवं मीडिया को व्यक्तिगत स्तर तक पहुंचाया है। वह नागरिक जो मुख्यधारा की मीडिया के सुनियोजित समाचार–विचार सुनकर चुप रह जाता था वह अब उसकी प्रतिक्रिया में अपनी बात कहने में सक्षम भी हुआ है। न्यू–मीडिया की इस देन ने पत्रकारिता जगत में पारदर्शिता एवं व्यक्तिगत भागीदारी को बढ़ाया है।

न्यू–मीडिया ने मीडिया के लोकतांत्रिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। किंतु, स्वतंत्रता का उपयोग किसी पर हमला करने अथवा भ्रामक टिप्पणी या समाचार प्रसारित करने के लिए उपयोग हो तो खतरनाक हो जाती है। वैश्विक पहुंच, व्यक्तिगत भागीदारी एवं तीव्रता जैसे गुणों वाले न्यू–मीडिया का दुष्प्रयोग उसके गुणों जितना ही खतरनाक भी है। इसलिए न्यू–मीडिया के गुणों का लाभ उठाते हुए हमें उसके अनजान खतरों से भी सावधान रहना चाहिए। यह सच है कि बीते कुछ वर्षों से सरकार की साख और कार्यों पर सवाल खड़े हुए हैं और इन सवालों को खड़ा करने में न्यू–मीडिया भी सहायक रहा है। किंतु, सरक. ारिया घोटालों को उजागर करने वाले न्यू–मीडिया में प्रसारित गलत समाचारों ने उसकी साख को भी घेरे में लाने का काम किया है।

पिछले दिनों ग्लोबल एसोसियेटिड न्यूज नामक एक फर्जी वेबसाइट ने अमिताभ बच्चन के सड़क दुर्घटना में मारे जाने की खबर प्रसारित की थी। राजेश खन्ना की मृत्यु से कई दिन पूर्व ही उनकी मृत्यु का समाचार प्रसारित किया गया था। पिछले वर्ष शशि कपूर की मृत्यु का भी फर्जी समाचार प्रसारित हुआ। जिसे लोगों ने ट्वीट और री–ट्वीट करना प्रारंभ कर दिया। प्रशंसकों ने अपने स्टार को श्रद्धांजलि देना भी प्रारंभ कर दिया। इसी प्रकार से दक्षिण अफ्रीका में पिछले वर्ष 16 जनवरी को नेल्सन मंडेला की मृत्यु की सनसनीखेज एवं भ्रामक खबर सोशल मीडिया पर तैर गई थी। इन खबरों से परेशान होकर नेल्सन मंडेला फांउडेशन ने विज्ञप्ति जारी की कि मंडेला स्वस्थ और जीवित हैं। गौरतलब है कि ऐसी ही खबर ओबामा के बारे में भी प्रसारित हुई थी। न्यू–मीडिया पर प्रसारित भ्रामक समाचार कई बार विकट स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। जैसे असम हिंसा के संदर्भ में हुआ। वह मुददा जो प्रदेश में ही चिंता का विषय था, वह पूरे देश के लिए त्रासदी जैसा हो गया। इसका कारण कुछ उपद्रवी अथवा सिरफिरे लोगों के द्वारा न्यू–मीडिया का दुष्प्रयोग था। न्यू–मीडिया पर इस प्रकार के दुष्प्रचार अथवा व्यक्ति विशेष की अवमानना से संबंधित मामलों में कार्रवाई करना भी कठिन है। इसका कारण फेसबुक, ट्विटर अथवा अन्य सोशल साइट्स पर बने फर्जी अकांउटस हैं। न्यू–मीडिया उस वन की तरह हो गया है जहां वन्य प्राणी स्वच्छंद विचरण करते हैं। किंतु, वह माध्यम जिसकी वैश्विक पहुंच ही उसकी बड़ी कमजारी भी हो उसमें इस तरह के विचरण की आजादी नहीं दी जा सकती है।

पिछले दिनों ट्विटर ने प्रधानमंत्री के छह फर्जी ट्विटर खातों को बंद किया। यह एक गंभीर मामला है। प्रधानमंत्री के फर्जी खातों पर उनके फॉलोवर भी बहुत थे, वे उस अकांउट पर की जाने वाली टिप्पणी को प्रधानमंत्री की टिप्पणी समझ खुश हुए होंगे। यह मामला पहचान चुराने जैसा है। किसी भी व्यक्ति की पहचान को चुराकर उसका गलत इस्तेमाल करना गैरकानूनी है। साइबर विशेषज्ञ पवन दुग्गल के मुताबिक किसी के नाम फर्जी अकांउट बनाना आईटी कानून की धारा 66 सी के तहत कानूनी अपराध है।

असम दंगों में अफवाहें फैलाने के मामले में जब विवादित अकांउट्स की जांच की गई तो अधिकतर फर्जी निकले। इस तरह के मामलों में अब तक सरकारी नीति प्रतिबंध अथवा कुछ दिनों के लिए प्रतिबंध की रही है। जो इसका सही हल नहीं है। प्रतिबंध लगाने की बात कहते ही वह अभिव्यक्ति की आजादी पर लगाम कसने जैसा लगता है। न्यू–मीडिया के सही उपयोग एवं संभावित खतरों से बचने के लिए यह अनिवार्य है कि कोई भी अकांउट बिना प्रामाणिक जानकारी के न खुले। पहचान निश्चित होने के बाद भी कोई विवादित टिप्पणी अथवा चित्र पोस्ट करे, ऐसा मुश्किल ही होगा। साथ ही ऐसी टिप्पणियां करने वालों की पहचान कर कार्रवाई करना बहुत आसान हो जाएगा। ट्विटर, फेसबुक अथवा अन्य सोशल साइटों से जब भी विवादित सामग्री हटाने को कहा गया तो अपने जवाब में उन्होंने इस प्रकार की कार्रवाई को मुश्किल बताया। इसका कारण यह भी है कि इनका सर्वर यहां न होकर अमेरिका में है। ऐसे में प्रत्येक पोस्ट पर निगरानी रखना संभव नहीं है।

जब पोस्ट पर पहले निगरानी रखना संभव न हो और रोकना भी संभव न हो। तब पोस्ट करने वाले की पहचान सुनिश्चित होना अनिवार्य है। भारतीय लोकतंत्र में साइबर दुनिया से इतर भी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्राप्त है। लेकिन उसमें व्यक्ति की पहचान छिपी नहीं रहती है। किंतु, सोशल मीडिया में इसके उलट पहचान न होना ही सबसे बड़ी समस्या है। ऐसे में सोशल मीडिया पर पाबंदी के बजाय उसके लिए कानूनी प्रावधानों की आवश्यकता है। साथ ही व्यक्ति की पहचान सुनिश्चित हो सके इसके लिए अकांउट बनाते समय उसकी पहचान सुनिश्चित करना भी अनिवार्य हो गया है।

सोशल नेटवर्किंग साइट सोशल नेटवर्क को प्रगाढ़ करें। लोकतांत्रिक बहस–मुबाहिसों का हिस्सा बनी रहें। लोकतंत्र को मजबूत करने में रचनात्मक भूमिका का निर्वाह करें। इसके ऐसे कानून की आवश्यकता है ताकि सोशल नेटवर्किंग साइट पर गैर–सोशल पोस्ट करने वालों की पहचान कर उन पर कार्रवाई सुनिश्चित की जा सके। ■

क्या भारतीय परिप्रेक्ष्य में विदेशी मीडिया की पुष्टि अनिवार्य है?

जनमत निर्माण का साधन माने जाने वाले अखबार आज अपने मत की पुष्टि के लिए विदेशी अखबारों को प्रमाण मान रहे हैं। हाल ही में विदेशी समाचार माध्यमों में प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह की भूमिका पर सवाल उठने के बाद भारतीय मीडिया में भी उनके नेतृत्व पर सवाल उठे व प्रमाण के तौर पर विदेशी रिपोर्ट का प्रयोग किया गया। पहले टाइम मैगजीन में मनमोहन को 'अण्डरएचीवर' बताया गया और अब वाशिंगटन पोस्ट में की गयी टिप्पणी को मीडिया अपनी अभी तक की खबरों की पुष्टि के तौर पर प्रस्तुत कर रही है। विदेशी मीडिया से इस प्रकार प्रमाणपत्र पाने की ललक क्या भारतीय मीडिया की न्यूनग्रंथि को नहीं उजागर करती? ऐसे में क्या आपको लगता है कि भारतीय पत्रकारिता अभी भी उपनिवेशी सोच से बाहर नहीं आ सकी है?

मीडिया का ह्रास तो तभी हो गया था जब यहां वैचारिक दृष्टि से सक्षम लोगों की जगह तकनीकी काम में माहिर लोगो को ज्यादा तवज्जो दी गई। यदि भारतीय खबरिया चैनलों को देखा जाये तो खबरों के लिए वो आज भी अखबारों या पत्रिकाओ पर निर्भर हैं। भारतीय मीडिया की इस हालत के लिए मैं वैचारिक और बौद्धिक अभाव को जिम्मेदार मानता हूं।

राहुल पार्चा, स्वतंत्र लेखक

सही मायने में मीडिया वही तो कर रहा है जो सरकार चाहती है। देश में किसी की हिम्मत बची नहीं जो सरकार के खिलाफ बोले। अन्ना और बाबा का हाल सब देख चुके हैं तो मीडिया को जैसे ही मौका मिला उसने उसे बांधने वाले को भी नहीं छोड़ा। देश ने नहीं, तो विदेशियों ने मौका दिया और इन्होने लपेट दिया। अब सरकार उनकी रिपोर्ट को भी गलत बता रही है। ऐसा लगता है कि दुनिया में बस एक ये ही सरकार ठीक है, बाकी सब गलत। वैसे भी टाइम मैगजीन और वाशिंगटन पोस्ट ने जो छापा वो कितना सच है और कितना झूठ आप और हम सब जानते हैं।

विकास शर्मा, नवभारत टाइम्स

ये मीडिया के वैश्वीकरण का दौर है और मीडिया का स्वरूप भी बदल तेजी से बदल रहा है। अगर विदेशी मीडिया की ओर से प्रधानमंत्री की आलोचना की जाती है तो इसको स्वीकार किया जाना चाहिए न कि इसको नजरंदाज करना चाहिए। कुछ लोग इसे अमेरिका के बड़ते दबदबे के तौर पर देख सकते हैं लेकिन लोकतंत्र मे स्वस्थ आलोचनाओं का स्वागत होना चाहिए और उन्हें दूर करने के उपाय करने चाहिए। हमारे देश का भी मीडिया विदेशी सरकारों की आलोचना करने के लिए स्वतंत्र है। इसलिए सरकार की नीतियों की समीक्षा होनी चाहिए, आलोचनाओ की नहीं।

अनुराग पाण्डेय, पीटीआई भाषा

भारतीय मीडिया द्वारा विदेशी, खासकर अमेरिकी मीडिया से प्रमाण पत्र का इंतजार करना बहुत दुख की बात है क्योंकि यह हमारे देश की संप्रभुता के खिलाफ है। ऐसा नही है कि केवल विदेशी मीडिया ही प्रधानमंत्री की आलोचना कर रहा है। फ्रंटलाइन जैसी हमारे देश की भी कई पत्रिकाओ ने प्रधानमंत्री को उनकी नीतियों को लेकर घेरा था लेकिन उस पर किसी का ध्यान नही गया और माना गया कि यह विपक्ष द्वारा प्रायोजित है। शायद इसीलिए भारतीय मीडिया को पिछलग्गू मीडिया कहा जाता है। इस घटना के लिए उल्टा भारतीय मीडिया को 'अंडर अचीवर' कहा जाना चाहिए।

रजनीकांत, राष्ट्रीय सहारा

हम कुछ भी कहें या कुछ भी करें, उसको सही या गलत तय करने के लिए हमें पश्चिमी नजरिए से देखने की आदत पड़ गई है। ऐसा लगता है कि हमारे पास वह उपकरण है ही नहीं जिससे किसी भी बात का प्रमाण दिया जा सके। पश्चिम के पास है और काफी मजबूत है, वह अगर कह रहे हैं तो सत्य ही होगा, पश्चिम में सत्य ही होता है सत्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होता, जबकि हमारे यहां तो लोग पैदा होते ही इस लिए रोते हैं कि उन्होंने पश्चिम में जन्म क्यों नही लिया, यह बात मीडिया पर भी लागू होती है। हमारे नीति नियंता भी इसी बीमारी के शिकार है। सब अपने आपको दूसरे की आंखों से देखना चाहते हैं। दर्शन, राजनिति, साहित्य सब जगह जो उपकरण उपयोग में लाये जाते हैं वो पश्चिम के ही है, और हम मानते हैं कि उनके पास देखने के जो उपकरण हैं दूरबीन सरीखी कोई मशीन है जिसमे सबकुछ साफ नजर आता है। हमारे पास तो वह अदृश्य मशीन है ही नहीं तो उनकी बात मानने के आलावा कोई चारा नहीं।

विद्याभूषण, जम्मू–कश्मीर अध्ययन केन्द्र

आज की मीडिया बस टीआरपी के लिए काम करती है, उन्हें किसी से कोई मतलब नहीं है। अपने भारत में भी बहुत से मुद्दे ऐसे हैं जो समाचार बनने लायक है किन्तु मीडिया को उससे कोई मतलब नहीं। यह अपनी संस्कृति को छोड़कर विदेशी संस्कृति को अपना रहे हैं। इन्हें यह नहीं दिख रहा कि विदेशियों को उन्हीं की संस्कृति की वजह से बहुत समस्याएं हो रही हैं जिसके कारण उन्होंने भी भारतीय संस्कृति को अपनाना शुरू कर दिया है। किन्तु अपने लोग इस बात को नहीं समझते और कोई समझाएं तो उसे गलत कहते हैं।

दिलीप चौरसिया, स्वतंत्र लेखक

■

असम के पत्रकारों ने मांगी सुरक्षा

असम में जारी हिंसा की आग में पत्रकार भी सुरक्षित नहीं है जिसके मद्देनजर उन्होंने ड्यूटी पर तैनात पत्रकारों की सुरक्षा और इसके साथ ही 'ऑल असम माइनॉरिटी स्टूडेंट्स यूनियन (एएएमएसयू)' को प्रतिबंधित करने की मांग की है।

उल्लेखनीय है कि असम में अगस्त से जारी हिंसा के दौरान कई पत्रकारों पर हमले किए जा चुके हैं। हाल ही में एएएमएसयू समेत 30 अन्य संगठनों ने असम बंद के दौरान पूरा दिन हिंसा की और उनके समर्थक डंडा व हथियार लेकर गलियों में आ गए। इस दौरान गोलपरा, बरपेटा, समगुड़ी और तेजपुर में लगभग 12 पत्रकारों पर हमले किए गए।

पत्रकारों के लिए सुरक्षा की मांग को लेकर केवल पत्रकार ही नहीं बल्कि मानवाधिकार कार्यकर्ता और वकील भी आवाज उठा रहे हैं। भारत के मीडिया संगठन भी ड्यूटी पर तैनात पत्रकारों के लिए विशेष कानून बनाए जाने की मांग कर रहे हैं। 'नेशनल यूनियन ऑफ जर्नलिस्ट्स' सुरक्षा की मांग को लेकर राजधानी दिल्ली में प्रदर्शन किया है और विशेष कानून बनाने की मांग को लेकर भारत के राष्ट्रपति को ज्ञापन भी सौंपा है। इसके अलावा असम में पत्रकारों की फोरम ने राज्य सरकार को ज्ञापन सौंप तुरन्त सुरक्षा की मांग की है।

प्राप्त जानकारी के अनुसार असम में पिछले 2 दशकों में 20 से भी ज्यादा पत्रकार मारे जा चुके हैं। हैरानी की बात तो यह है कि अब तक एक भी अपराधी को सजा तक नहीं मिली है और प्रशासन व जांच एजेंसियां पत्रकारों की सुरक्षा को लेकर उदासीन हैं।

कोयला घोटाले में मीडिया भी नहीं है पाक साफ

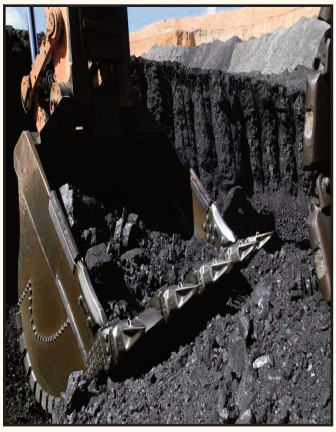

देश के अब तक के सबसे बड़े घोटाले में मीडिया घरानों की भूमिका पर भी सवाल उठ रहे हैं। कोयला घोटाले में लिप्त पाई गई 10 कम्पनियों को जारी कारण बताओ नोटिस का जवाब सुनने के लिए अंतर मंत्रालय समूह की एक बैठक भी हुई। जांच के दौरान आशंका जताई गई है कि कोयला ब्लॉक आबंटन के दौरान कम से कम चार मीडिया घरानों को करोड़ों का लाभ हुआ है।

प्राप्त जानकारी के अनुसार कोयला ब्लॉक प्राप्त करने के लिए तीन प्रिंट मीडिया व एक इलैक्ट्रॉनिक चैनल ने गलत तथ्यों को प्रस्तुत कर मुनाफा कमाया है। इन मीडिया घरानों द्वारा खुद को बचाने के लिए अस्थाई तौर पर कम्पनियां भी खड़ी की गई जिससे इनका नाम सामने न आ सकें। एक प्रकाशन ने तो एक बिजली बनाने वाली कम्पनी ही खड़ी कर दी जिसके द्वारा कोयला ब्लॉक आबंटन के दौरान मुनाफा कमाया गया। उल्लेखनीय है कि अंतर मंत्रालय समूह की तीन दिवसीय बैठक के दौरान एक मीडिया घराने को जांच पड़ताल पर बुलाए जाने की भी खबर है।

पाकिस्तान ने नहीं दिया भारतीय संपादक को वीजा

भारत स्थित पाकिस्तान के उच्चायुक्त ने हाल ही में 'द हिंदू' के दिल्ली संस्करण के स्थानीय संपादक प्रवीण स्वामी को वीजा देने से मना कर दिया। स्वामी 8 सितंबर को विदेश मंत्री स्तर की वार्ता के लिए पाकिस्तान जाने वाले सदस्यों में शामिल थे।

गौर करने की बात तो यह है कि उनके वीजा पर स्टैंप लगा दिया गया था और उन्हें पाकिस्तानी उच्चायोग में बुलाया गया था। इसके बाद पाकिस्तनी उच्चायुक्त ने उनका वीजा रद्द कर दिया और 'द हिन्दू' को किसी दूसरे पत्रकार का नाम देने के लिए कहा। 'द हिन्दू' ने ऐसा करने से मना कर दिया। स्वामी ने पहली बार पाकिस्तान के वीजा के लिए आवेदन किया था। उल्लेखनीय है कि स्वामी सामरिक एवं सुरक्षा मुद्दों पर लिखते हैं। उन्होंने जम्मू–कश्मीर में आतंकवाद पर गहन अध्ययन किया है जिसके लिए उन्हें 2005–06 के दौरान 'रामनाथ गोयनका एक्सीलेंस इन जर्नलिज्म अवॉर्ड' भी मिल चुका है। उन्होंने पाकिस्तानी सरकार और पाकिस्तानी सेना के बारे में भी लिखा है।

1. छद्म विज्ञापन– पत्र–पत्रिकाओं में प्रचार के उद्देश्य से प्रकाशित ऐसा विज्ञापन, जो लेख या फीचर जैसा प्रतीत हो, छद्म विज्ञापन कहलाता है।

2. एडवोकेसी– पत्रकारिता की वह शैली, जिसमें संवाददाताओं से वस्तुपरक या उद्देश्यपरक दृष्टिकोण की अपेक्षा की जाए, 'एडवोकेसी' कहा जाता है।

3. पूर्ण निष्पादित– 'पूर्ण निष्पादित' का प्रयोग मुद्रण–विभाग तब करता है, जब किसी समाचारपत्र–पत्रिका के एक संस्करण की समस्त पांडुलिपियां कंपोज हो जाती हैं। हिंदी में इसके लिए 'पूर्ण निष्पादित' वाक्य का प्रयोग किया जाता है।

4. समाचार प्रेषण– पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ अथवा दूरदर्शन व आकाशवाणी में प्रसारण योग्य समाचार, सूचना आदि को प्रसारणार्थ संबद्ध कार्यालय में भेजना समाचार संप्रेषण कहा जाता है।

5. परिशिष्ट– दैनिक समाचारपत्रों के नियमित समाचार पृष्ठों के अतिरिक्त विषय–विशेष (फिल्म, उद्योग, साहित्य, कला, स्वास्थ्य, विज्ञापन आदि) से संबद्ध सामग्रीयुक्त अलग पृष्ठ को 'परिशिष्ट' कहा जाता है।